इकाई 3 . उपनिषद् का अर्थ रचनाकाल ,संख्या प्रमुख उपनिषदों का परिचय

3.1 प्रस्तावना

उपनिषद वर्णन से सम्बन्धित संख्या में यह तीसरी इकाई है। इसके पूर्व की दो इकाईयों में आपने आरण्यक एवं वेदाड्ग से सम्बन्धित विस्तृत अध्ययन किया है। इस इकाई में उपनिषद का अर्थ, समय एवं उपनिषदों के प्रतिपाद्य का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

दार्शनिक विचारधाराओं का मूल स्रोत वैदिक सूक्त हैं। इन्ही विचारधाराओं का विकसित रूप उपनिषदों में गति विशरण, अवसादन, अवसादन, पाया जाता है। इसका तात्पर्य होता है ऐसी विद्या जो समस्त सांसारिक क्रिया कलापों का नाश करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है। प्राचीन समय एवं उपनिषद् विद्या का अध्ययन एवं अध्यापतन एकान्त में होता था। अतः इसे रहस्य विद्या भी कहा जाता है । वेद का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदो में गम्भीर ज्ञान का विषय चिन्तित है।

अतः इस इकाई में वर्णन किये गयें तथ्यों का अध्ययन करने के पश्चात आप उपनिषद का अर्थ समझाते हुए उसके रचनाकाल व विभिन्न उपनिषदों के प्रतिपाद्य को भी बता सकेगें।

3.2 उद्देश्य

उपनिषद का अर्थ रचनाकाल व प्रमुख उपनिषदों के परिचय वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप–

1.उपनिषद का अर्थ बता सकेंगें।
2. उपनिषद की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेगें।
3. उपनिषदों के रचनाकाल को बतायेगें।
4. उपनिषदों के प्रकार बता सकेगें ।
5. इस इकाई में उल्लिखित प्रमुख उपनिषदोंके प्रतिपाद्य को समझा सकेगें।

3.3 उपनिषद् का अर्थ रचनाकाल ,संख्या

उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग पूर्वक सद् (सदृलृ) धातु में 'क्विप्' प्रत्यय लगकर बनता है, जिसका अर्थ होता है 'समीप में बैठना' अर्थात् गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। धातुपाठ में सद् (सद्लृ) धातु के तीन अर्थ निर्दिष्ट हैं – विशरण, (विनाश होना), गति (प्रगति), अवसादन (शिथिल होना)। इस प्रकार जो विद्या समस्त अनर्थों के उत्पादक सांसारिक क्रिया–कलापों का नाश करती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, उसे 'उपनिषद्' कहते हैं।

आचार्य शङ्कर नें 'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है–''जो मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा के साथ आत्मभाव से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं, यह विद्या उनके जन्म–मरण, रोग आदि अनर्थों को नष्ट करती है और परब्रह्म को प्राप्त कराती है तथा अविद्या आदि संसार के कारणों को समूल नष्ट करती है। वह उप+नि पूर्वक सद् धातु का अर्थ स्मरण होने से 'उपनिषद्' है।

प्रचीनकाल में इस उपनिषद् विद्या का अध्ययन–अध्यापन रहस् (एकान्त) स्थान में किया जाता था, अतः इसे 'रहस्य–विद्या' भी कहते हैं। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर 'रहस्यविद्या' या 'ब्रह्मविद्या' के अर्थ में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार जिन ग्रन्थों में रहस्यात्मक ज्ञान आत्मविद्या की चर्चा की जाती है, उसे उपनिषद् कहते हैं और वेद का अन्तिम भाग होने के कारण उसे 'वेदान्त' भी कहा जाता है ।

ओल्डनबर्ग ने उपनिषद् का अर्थ 'पूजा की एक पद्धति' बताया । इस प्रकार उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ 'रहस्य' है, जो रहस्य ज्ञान (गुह्यज्ञान) सामान्य लोगों के

लिए अभिप्रत नहीं था, बल्कि कुछ परखे हुए विशिष्ट व्यक्तियों को दिया जाता था। छान्दोग्योपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि ''पिता रहस्य ज्ञान (ब्रह्मविद्या) का उपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र या अतिविश्वास पात्र शिष्य को ही दे, अन्य किसी को नहीं, चाहे वह उसे समुद्रों से घिरी एवं रत्नों से भीरी समस्त पृथ्वी को ही क्यों न दे दे। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि गुरु शिष्य के बार–'बार प्रार्थना करने पर कठोर परीक्षा के बाद ही उसे गुह्यज्ञान का उपदेश देता है। वनों में एकान्त आश्रमों के शान्त वातावरण में गुरुजन रहस्यज्ञान (गुह्यज्ञान) या अध्यात्मविद्या का चिन्तन किया करते थे और उस ज्ञान को निकटस्थ योग्य एवं विश्वासपात्र शिष्यों को सिखाया करते थे, क्योंकि योग्य, सुपात्र एवं दीक्षित व्यक्ति ही उपनिषदों के रहस्यमय ज्ञान को समझ सकते हैं।

उपनिषदों की संख्या और रचनाकाल

परम्परा के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 ही मानी जाती है। मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का उल्लेख है, जिनमें ऋग्वेद से सम्बद्ध 10 उपनिषद् शुक्त यजुर्वेद की 19, कृष्णयजुर्वेद की 32, सामवेद की 16 और अथर्ववेद से सम्बद्ध 31 उपनिषद् हैं। मुक्तिकोपनिषद् में कहा गया है कि ये 108 उपनिषद् सभी उपनिषदों में सारभूत हैं, इनके अध्ययन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्।
सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम्।।

(मुक्तिकोपनिषद्, प्रथम अध्याय)

इस कथन से यह ज्ञात होता है कि उपनिषदों की संख्या इससे भी अधिक थी और उनमें 108 उपनिषदों की प्रमुखता स्वीकार की गयी है। 'उपनिषद्वाक्यमहाकोश' में 223 उपनिषदों का उल्लेख है। अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास से लगभग दो सौ उपनिषदें प्रकाशित हो चुकी हैं। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'उपनिषद् अङ्क' में 220 उपनिषदों का उल्लेख है और उनमें से 54 उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन भी हुआ है। किन्तु इनमें दस उपनिषदें ही प्रमुख एवं प्रामाणिक मानी जाती है, क्योंकि आचार्य शङ्कर ने इन्हीं दस उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार दस उपनिषदें निम्नलिखित हैं –

ईश–के–कठ–प्रश्न–मुण्ड–माण्डूक्य–तितिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।

(मुक्तिकोपनिषद् 1/30)

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, तथा बृहदारण्यक ये ही दस उपनिष्ज्दें प्राचीन तथा प्रामाणिक हैं। इनके अतिरिक्त कौषीतकि तथा श्वेताश्वर उपनिषद् भी प्राचीन माने जाते हैं क्यों शङ्कर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में दस उपनिषदों के साथ इन दोनों को भी उद्धृत किया है, किन्तु उन्होंने उन दोनों पर भाष्य नहीं लिखा है। संक्षेप में प्रत्येक वेद से सम्बद्ध उपनिषदें इस प्रकार हैं –

1.	ऋग्वेद के उपनिषद्	–	1.	ऐतरेय उपनिषद्
			2.	कौषीतकि उपनिषद्
2.	शुक्ल–यजुर्वेद के उपनिषद्	–	3.	ईशोपनिषद्
			4.	बृहदारण्यकोपनिषद्
3.	कृष्णयजुर्वेद के उपनिषद्	–	5.	तैत्तिरीयोपनिषद्
			6.	कठोपनिषद्
			7.	श्वेताश्वतरोपनिषद्
			8.	मैत्रायणी उपनिषद्
			9.	महानारायणोपनिषद्

4.	सामवेद के उपनिषद्	–	10.	केनोपनिषद्
			11.	छान्दोग्योपनिषद्
5.	अथर्ववेद के उपनिषद	–	12.	मुण्डकोपनिषद्
			13.	माण्डूक्योपनिषद्
			14.	प्रश्नोपनिषद्

रचनाकाल – कालक्रम की दृष्टि से उपनिषद् चार वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथमवर्ग में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौषीतकि रखे जा सकते है, जो सबसे प्राचीन हैं और जिनकी रचना ब्राह्मणों की शैली में गद्य में हुई है। केनोपनिषद् में शैलीगत परिवर्तन परिलक्षित होता है। यह अंशतः छान्दोबद्ध और अंशतः गद्यात्मक है और यह उपर्युक्त उपनिषदों से परवर्ती है। ड्यूसन का कथन है कि ''इन सभी उपनिषदों में पूर्ववर्ती और परवर्ती पाठ्य मिले हुए हैं। इसलिए कालनिर्णय करते हुए प्रत्येक पर अलग से विचार करना होगा, किन्तु यदि हम केवल भाषा के आधार पर विचार करते हैं तो इन उपनिषदों के परवर्ती भाग भी अत्यन्त प्राचीन काल के सिद्ध होते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बृहदारण्यक और छान्दोग्य जैसी बड़ी उपनिषदें ब्राह्मणों और आरण्यकों के काल से अधिक परवर्ती नहीं हैं, निश्चित ही है कि बौद्ध धर्म के आविर्भाव से पूर्ववर्ती और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती हैं।

द्वितीय वर्ग में कठ, ईश, श्वेताश्वतर और महानारायण उपनिषद् आते हैं। ये छन्दोबद्ध हैं और इनकी भाषा ओजस्वी एवं प्रवाहपूर्ण है। ये कुछ परवर्ती काल की हैं, किन्तु बुद्ध के पूर्ववर्ती हैं। तृतीय वर्ग में प्रश्न, मैत्रायणी और माण्डूक्य रखे जा सकते हैं। ये गद्यात्मक हैं किन्तु प्रथम वर्ग के उपनिषदों के गद्य की अपेक्षा ये परवर्ती काल के प्रतीत होते हैं और शैली लौकिक संस्कृत के समीप हैं, जो बुद्ध के परवर्ती काल की हैं। चतुर्थ वर्ग में कुछ आथर्वण उपनिषद् आते हैं, जिनमें गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण है और जो पुराणों तथा तन्त्रों से अधिक सम्बद्ध है। इनमें कुछ उपनिषदें महाकाव्यीय शैली में श्लोकों में लिखी गयी हैं। ये सबसे परवर्ती हैं। किन्तु इनमें भी कुछ ऐसी भी उपनिषदें हैं जो प्राचीनकाल की रचना हैं और जिन्हें वेदों से सम्बद्ध माना जाता है।

जाबालि उपनिषद् एक प्रामाणिक उपनिषद् है, जिसमें परमहंस नामक तपस्वी का सुन्दर वर्णन है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में इसे प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में उद्धृत किया है। 'सुबाल उपनिषद्' में सृष्टि–रचना शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान तथा अध्यात्मशास्त्र के तत्व वर्णित हैं। रामानुज ने इससे बहुत से उद्धरण लिखे हैं। 'गर्भ उपनिषद्' में भ्रूणविज्ञान के साथ पुनर्जन्म प्राप्त न करने के सम्बन्ध में विधियाँ वर्णित हैं। 'अथर्वाङ्गिरस उपनिषद्' की धर्मसूत्रों में पवित्र ग्रन्थ के रूप में चर्चा है। 'वज्रसूचिका उनिषद्' में ब्रह्म का निरूपण है। वहाँ यह बताया गया है कि जो ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान रखता है, वही ब्राह्मण है। ये अधिकांश दार्शनिक से बढ़कर धार्मिक हैं। डॉ0 राधाकृष्णन् का मत है कि प्राचीन उपनिषदों का रचनाकाल 800 ई0पू0–300 ई0पू0 के मध्य है। किन्तु पाणिनि ने अष्टध्यायी में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनि का समय 700 ई0पू0 माना जाता है। अतः इससे पूर्व उपनिषद् मान्य हो चुके थे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि 700 ई0पू0 में प्राचीन उपनिषदों की रचना हो चुकी थी। तिलक ने ज्योतिष गणना के आधार उपनिषदों का रचनाकाल 1600 ई0पू0 माना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समस्त उपनिषदें किसी एक काल एवं किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं हैं। विभिन्न काल के विभिन्न ऋषियों ने अपने जीवनकाल में संसार का जो कुछ अनुभव किया , इनमें उनके अनुभवों का संग्रह है, उनके विचारों का संग्रह है। इनमें कुछ ऋषि वैदिककालीन भी हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये वैदिककाल के अन्त की और ब्राह्मणयुग के समकालीन कृतियाँ हैं। प्राचीन उपनिषदें, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध वेदों से है और जो ब्राह्मणों के भाग हैं,

उनका रचनाकाल बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व का है और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती है।

3.4 प्रमुख उपनिष दों का परिचय

केवल चौदह उपनिषदों को ही आकर ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि ये चौदह उपनिषद् ही वैदिक परम्परा से सम्बद्ध एवं प्राचीन हैं। अतः इन चौदह उपनिषदों का ही परिचय यहॉं दिया जा रहा है –

1. **ऐतरेयोपनिषद्**

ऐतरेयोपनिषद् का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से है। ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम भाग को ऐतरेय आरण्यक कहते हैं। ऐतरेय आरण्यक में द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ से षष्ठ अध्यायों को 'ऐतरेय–उपनिषद्' कहते हैं। इसमें कुल तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में विव की उत्पत्ति का मार्मिक विवेचन है। इसमें विश्व कस स्रष्टा आत्मा (ब्रह्म) बताया गया है। इस अध्याय का आधार ऋग्वेद का पुरुषसूक्त है। आत्मा (ब्रह्म) का व्यक्त रूप ही पुरुष है और यह आत्मा पुरुष के इन्द्रिय, मन और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं के समानान्तर है। द्वितीय अध्याय में जन्म, जीवन और मरण इन तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में आत्मा के स्वरूप का विवेचन है। इसमें 'प्रज्ञान' की महिमा वर्णित है और आत्मा को प्रज्ञान का स्वरूप बताया गया है। यह प्रज्ञान ही ब्रह्म है (प्रज्ञानं ब्रह्म) और इसी से समस्त विश्व की उत्पत्ति हुई है।

2.कौषीतकि उपनिषद्

यह कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध है। कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध कौषीतकि आरण्यक है। कौषीतकि आरण्यक के तृतीय से षष्ठ अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। इसे ही कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं। इस उपनिषद् में कुल चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में मृत्यु के बाद जीवात्मा के प्रयाण के देवयान और पितृयान नामक मार्गों का वर्णन है। इसमें चित्र नामक क्षत्रिय राजा ने उद्दालक आरुणि को परलोक की शिक्षा दी है। राजा चित्र यज्ञ में आरुणि को पुरोहित बनाता है। आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजता है। वहाँ पहुँचने पर चित्र ने पूछा कि लोक में क्या ऐसा कोई गुप्त स्थान है, जहाँ तुम मुझे रख सकोगे ? क्या लोक में दो मार्ग हैं, जिनमें से एक में तुम मुझे लगा दोगे ? श्वेतकेतु ने कहा कि मुझे ज्ञात नहीं, आचार्य से प्रश्न पूछूंगा। यह कहकर उसने घर लौट कर पिता से प्रश्न पूछा। पिता ने कहा कि मुझे भी उत्तर ज्ञात नहीं है। तब दोनों चित्र के पास जाते हैं। चि ने उन्हें बताया कि कुछ लोग अच्छे कर्मों के बल से ब्रह्मलोक चले जाते हैं और ब्रह्ममय हो जाते हैं। कुछ लोग स्वर्ग एवं नकर में जाते हैं और कुछ मरने के बाद मृत्युलोक में जन्म लेते हैं।

द्वितीय अध्याय में आत्मा के प्रतीक प्राण के स्वरूप का विवेचन है। प्राण ही ब्रह्म है और मन प्राणरूपी ब्रह्म का दूत है, नेत्र रक्षक हैं, श्रोत्र द्वारपाल हैं और वाणी दासी है। जो इनके स्वरूप को जानता है, वही इन्द्रियों पर अधिकार रख सकता है। तृतीय अध्याय में इन्द्र प्रतर्दन को प्राण और प्रज्ञा का उपदेश देते हैं। इसी प्रसङ्ग में प्राणतत्व का विशद विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में काशिराज अजातशत्रु बालाकि को पर ब्रह्म (ब्रह्मविद्या) का उपदेश देते हैं।

3. **ईशोपनिषद्**

शुक्लयजुर्वेद की काव्य एवं वासनेयी संहिता का चालीसवाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से प्रसिद्ध है, दोनों में अन्तर यह है कि काण्वसंहिता के चालीसवें अध्याय में अठारह मन्त्र हैं और वाजसनेयी संहिता में सत्रह मन्त्र हैं। इस अध्याय का प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यम्' से प्रारम्भ होता है, अतः इसका नाम 'ईशावास्योपनिषद्' है। ईशावास्योपनिषद् को ही 'ईशोपनिषद्' भी कहते हैं। यह लघुकाय उपनिषद् है किन्तु महत्व की दृष्टि से सर्वोपरित है। इसमें वेद का सार एवं गूढ़तत्व का विवेचन हुआ है। आत्मा के स्वरूप का जितना स्पष्ट विवेचन इस उपनिषद् में हुआ है, उतना किसी अन्य उपनिषद् में नहीं मिलता है। आत्मकल्याण के लिए ज्ञान

और कर्म दोनों के अनुष्ठान को आवश्यक बताया गया है। इसमें निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना व्यक्त की गयी है। इसमें विद्या और अविद्या, सम्भूति और असम्भूति का विवेचन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

4. **बृहदारण्यकोपनिषद्**

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम छः अध्यायों को बृहदारण्यक कहते हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों ही मिश्रित है, इसलिए इसका नाम 'बृहदारण्यकोपनिषद्' पड़ा। यह विशालकाय एवं प्राचीनतम उपनिषद् है। इस उपनिषद् में तीन भाग हैं और प्रत्येक भाग में दो–दो अध्याय हैं। इस प्रकार कुल छः अध्याय हैं। इनमें प्रथम भाग को मधुकाण्ड, द्वितीय भाग को याज्ञवल्क्यकाण्ड और तृतीय भाग को खिलकाण्ड कहते हैं। प्रत्येक अध्याय ब्राह्मणों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में छः ब्राह्मण, द्वितीय अध्याय में छः ब्राह्मण, तृतीय में नौ ब्राह्मण, चतुर्थ अध्याय में छः ब्राह्मण, पञ्चम में पन्द्रह ब्राह्मण और षष्ठ अध्याय में पाँच ब्राह्मण हैं।

प्रथम काण्ड के प्रथम अध्याय में अश्वमेध यज्ञ की रहस्यात्मकता की व्याख्या, प्राण को आत्मा का प्रतीक मानकर आत्मा (ब्रह्म) से जगत् की उत्पत्ति, प्राण की श्रेष्ठता विषय रोचक आख्यान तथा आत्मा (ब्रह्म) की सर्वव्यापकता का वर्णन है जो प्रत्येक शरीर में जीवात्मा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। द्वितीय अध्याय में गार्ग्य एवं काशिराज अजातशत्रु के माध्यम से आत्मस्वरूप का विवेचन किया गया है। गार्ग्य ने काशिराज अजातशत्रु से कहा कि मैं ब्रह्म की व्याख्या करूँगा। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, विद्युत, वायु, अग्नि, जल, आत्मा में समन्वित पुरुष को ब्रह्म बताया, किन्तु अजातशत्रु ने कहा कि ब्रह्म में ये सब तो समाहित हैं, किन्तु इससे ब्रह्म का स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से सभी प्राण एवं प्राणी उद्‌भूत होते हैं। वह ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्ता एवं परमसत्य है। असीम–ससीम, साकार–निराकार, सविशेष–निर्विशेष भेद से ब्रह्म के दो रूप हैं। द्वितीय सम्वाद याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का है। वानप्रस्थ ग्रहण करते समय मैत्रेयी ने धन की अभिलाषा न कर अमरत्व प्राप्ति का उपाय पूछा। याज्ञावल्क्य ने विविध उदाहरणों द्वारा ब्रह्म की सर्वमयता का उपदेश दिया। इसमें मधुविद्या का भी उपदेश है।

द्वितीय काण्ड के प्रथम अध्याय (तृतीय अध्याय) में राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के द्वारा सभी ब्रह्मवादियों के पराजित होने का वर्णन है। इसमें चार आध्यात्मिक वाद हैं। प्रथम में याज्ञवल्क्य के द्वारा समस्त ब्रह्मवादियों के पराजित होने का वर्णन है इस वाद में यह सिद्ध किया गया कि ब्रह्म यद्यपि अज्ञेय हैं तथापि उसका ज्ञान साध्य है। द्वितीय वाद में राजा जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है। इस सम्वाद में याज्ञवल्क्य ऋषियों द्वारा प्रस्तुत 'प्राण ही ब्रह्म है' इस प्रकार के छः सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं और आत्मा (ब्रह्म) को अगोचर, अविनाशी एवं सर्वेश्वर बताते हैं। तृतीय सम्वाद में भी जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है। इसमें जीवात्मा की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, जन्म, मरण और मोक्ष इन छः अवस्थाओं का वर्णन है। चतुर्थ सम्वाद याज्ञवल्क्य और वचक्नु की कन्या गार्गी का सम्वाद है। द्वितीय काण्ड के द्वितीय अध्याय (चतुर्थ अध्याय) में याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद है, जिसमें जनक महर्षि याज्ञवल्क्य से तत्वज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसी अध्याय में याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी कात्यायनी तथा मैत्रेयी का सम्वाद वर्णित है, जिसमें याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हैं।

तृतीय काण्ड (पञ्चम और षष्ठ अध्याय) परिशिष्ट भाग है।इसके (पञ्चम) अध्याय में पन्द्रह खण्ड हैं। जो एक दूसरे से असम्बद्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये अलग–अलग समय की रचनाएँ हैं। इसमें ब्रह्म, प्रजापति, गायत्री, प्राण परलोक आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है। द्वितीय (षष्ठ) अध्याय में श्वेतकेतु एवं प्रवाह का दार्शनिक सम्वाद, प्राण की श्रेष्ठता, पञ्चाग्नि विद्या का महत्व, मन्त्रविद्या और उसकी परम्परा, सन्तानोत्पत्ति विज्ञान पुनर्जन्म के सिद्धान्त आदि विविध विषयों का विवेचन है।

5. **तैत्तिरीयोपनिषद्**

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण का अन्तिम भाग

तैत्तिरीय आरण्यक कहलाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस प्रपाठकों में सप्तम, अष्टम एवं नवम प्रपाठकों को तैत्तिरीयोपनिषद् कहते हैं। इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं, जिन्हें क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली एवं भृगुवल्ली कहते हैं। प्रथम शिक्षावल्ली में बारह अनुवाक हैं, ब्रह्मानन्दवल्ली में नौ और भृगुवल्ली में दस अनुवाक हैं। शिक्षावल्ली में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल आदि के विवेचन के साथ वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के नियम तथा स्नातक के लिए उपयोगी शिक्षाओं का निरूपण है। द्वितीय ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मविद्या का निरूपण है। इसमें ब्रह्म से स्वरूप का वर्णन है। ब्रह्म आनन्दरूप हैं, उसी से समस्त विश्व की सृष्टि हुई है। यह अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द रूप है, किन्तु इसका निवास आनन्दमय कोश है, जहाँ ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर मनुष्य परमानन्द का अनुभव करता है। ब्रह्म के स्वरूप को जान लेने पर मनुष्य अपने ही समान सबको समझने लगता है।सारा भेदभाव दूर हो जाता है और वह ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। तृतीय अध्याय भृगुवल्ली है। इसमें भृगु और वरुण का सम्वाद वर्णित है। वरुण अपने पुत्र भृगु को ब्रह्म का स्वरूप समझाते हुए कहते हैं कि जिससे ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे जीते हैं और अन्त में जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, वही ब्रह्म है। इसमें ब्रह्मप्राप्ति के साधन रूप तप का वर्णन है और 'पञ्चकोशों' का विवेचन वरुण एवं भृगु के सम्वाद के रूप में हुआ है। इसमें अतिथि सेवा का भी महत्व वर्णित है।

6. **कठोपनिषद**

यह कृष्णयजुर्वेद की कठखाखा का 'कठोपनिषद' है। इसमें कुल दो अध्याय और छः बल्लियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रथम अध्याय ही मूल उपनिषद् है, दूसरा अध्याय बाद में जोड़ा गया है, क्योंकि इसमें योग–सम्बन्धी विकसित विचारों एवं भौतिक पदार्थों की असत्यता सम्बन्धी विचारों के कारण परवर्ती सन्निवेश जान पड़ता है।

प्रथम अध्याय में नचिकेता और यम के उपाख्यान द्वारा आत्मा और ब्रह्म की व्याख्या की गयी है। नचिकेता पिता की आज्ञा से यम के पास पहुँचता है। यमराज उससे तीन वर माँगने को कहता है। नचिकेता दो वर माँगने के पश्चात् ''क्या आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी रहता है या नहीं ?'' यह तीसरा वर मांगता है। यम कहता है कि वह एक सूक्ष्मतत्व है, दूसरा वर मांग लो, और उसे नाना प्रकार के सांसारिक प्रलोभन देता है, किन्तु नचिकेता अपने प्रश्न पर दृढ़ रहता है और अन्त में उसके विशेष आग्रह पर यमराज आत्म स्वरूप का विवेचन करता हुआ उसे अर्द्वततत्व का मार्मिक उपदेश देता है और नचिकेता वर प्राप्त कर अपने घर लौट आता है।

प्रथम अध्याय को द्वितीय वल्ली में श्रेय एवं प्रेय का विवेचन है। श्रेय एक वस्तु है और प्रेय दूसरी वस्तु है। इनमें जो श्रेय को ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो प्रेय को अपनाता है, वह अपने लक्ष्य से पथभ्रष्ट हो जाता है।

द्वितीय अध्याय में प्रकृति और पुरुष दोनों को ही परमात्मा का स्वरूप बताया गया है। यह आत्मा सर्वव्यापक है और समस्त प्राणियों में उसका निवास है। जिस प्रकार वायु सर्वत्र व्याप्त होकर प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध है और जिस प्रकार प्रकाश सब जगह व्याप्त रहते हुए बाह्य दोषों से मुक्त रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी सर्वत्र व्याप्त रहते हुए बाह्य दोषों से मुक्त निर्विकार बना रहता है। आत्मा को विभु कहते हैं। उसकी प्राप्ति का साधन योग है।

7. **श्वेताश्वतरोपनिषद्**

यह उपनिषद् कृष्णयर्जुवेद से सम्बद्ध श्वेताश्वतर संहिता का एक अंश है। यह कठोपनिषद् के बाद की रचना है, क्योंकि उससे बहुत सा अंश इसमें लिया गया है, यहाँ तक कि कुछ वाक्य ज्यों के त्यों प्रस्तुत हैं। विषय वस्तु से यह प्रतीत होता है कि यह उस समय की रचना है, जब सांख्य और वेदान्त का पार्थक्य नहीं हुआ था। इसमें कुल छः अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में परमात्मा साक्षात्कार का उपाय ध्यान बताया गया है। द्वितीय अध्याय में योग का विस्तृत विवेचन है। तृतीय से पञ्चम अध्यायों में सांश्च एवं शैव सिद्धान्तों का विवेचन है। अन्तिम अध्याय में गुरु भक्ति का महत्व प्रतिपादित है। भक्तितत्व का विवेचन भी इस उपनिषद में है। इस उपनिषद् में सांख्य दर्शन के

मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। यह प्रकृति ही ब्रह्म की माया का दूसरा रूप है। इसमें प्रकृति को माया और महेश्वर को मायी कहा गया है। क्या वह माया वेदान्त की माया से भिन्न है, वेदान्त के अनुसार जगत् मिथ्या है, किन्तु इस उपनिषद् में जगत् के मिथ्यात्व की कल्पना नहीं है। कल्पान्त में ब्रह्म के द्वारा ही जगत् की सृष्टि और उसका प्रलय होता है। इस उपनिषद् में शिव को परमेश्वर कहा गया है। यह शिव ही समस्त प्राणियों में व्याप्त है और उसके सम्बन्ध में ज्ञान होने पर समस्त बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

8. **मैत्रायणी उपनिषद्**

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है। प्राचीनतम उपनिषदों की भांति यह गद्यबद्ध है। इसमें वैदिक भाषा के कोई चिह्न नहीं दिखाई देते। भाषा शैली की दृष्टि से यह महाकाव्यकाल की रचना प्रतीत होती है। इसमें कुल सात अध्याय हैं, जिनमें षष्ठ अध्याय के अन्तिम आठ प्रपाठक और सप्तम अध्याय परिशिष्ट रूप है। इसमें प्राचीन उपनिषदों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण, सांख्य एवं बौद्ध दर्शनों के लिए विचारों का आकलन योग के षडङ्गों का विवेचन तथा हठयोग के मन्त्र सिद्धान्तों का विवरण प्राप्त होता है। इसका मुख्य विषय आत्मरूप का विवेचन है। इसमें वेद–विरोधी सम्प्रदायों का भी उल्लेख मिलता है।इस उपनिषद् का विषय विवेचन तीन प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम प्रश्न है कि 'आत्मा भौतिक शरीर में किस प्रकार प्रवेश पाता है ?' इसका उत्तर दिया गया है कि 'स्वयं प्रजापति ही स्वरचित शरीर में चेतनता प्रदान करने के उद्देश्य से पञ्चप्राणवायु के रूप में प्रविष्ट होता है।' द्वितीय प्रश्न है कि 'यह परमात्मा किस प्रकार भूतात्मा बनता है ?' इस प्रश्न का उत्तर सांख्य सिद्धान्तों पर आधारित है। 'आत्मा प्रकृति के गुणों से पराभूत होकर अपने को भूल जाता है। तदनन्तर ात्मज्ञान एवं मोक्ष के लिए प्रयास करता है।' तृतीय प्रश्न है कि 'इस दुःखात्मक स्थिति से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है?' इस प्रश्न का समाधान स्वतन्त्र रूप से दिया गया है – 'ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाले वणार्ररम धर्म के अनुयायी व्यक्ति ही ज्ञान, तप और निदिध्यासन से ब्रह्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मण युग के प्रधान देवता अग्नि, वायु और सूर्य, तीन भावरूप सत्ताएँ काल, प्राण और अन्न तथा तीन लोकप्रिय देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये सभी ब्रह्म के रूप बताये गये हैं।इस उपनिषद् का अन्तिम भाग परिशिष्ट रूप है, जिसमें विश्व को सृष्टि की उपाख्यान वर्णित है। इसमें प्रकृति के तत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र से बताया गया है। इसमें ऋग्वैदिक एवं सांख्य सिद्धान्तों का समन्वय है।

9. **महानारायणोपनिषद्**

कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक को 'महानारायणोपनिषद्' कहा जाता है । यह सायण भाष्य के साथ प्रकाशित है। इसमें द्रविणों के अनुसार 64, आन्ध्रों के अनुसार 80, कर्णाटकों के अनुसार 74 अनुवाक हैं।इस प्रकार इसके तीन विभिन्न पाठ मिलते हैं, किन्तु इनमें आन्ध्र पाठ की ही मान्यता है। इसे 'याज्ञिक्युपनिषद्' भी कहते हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह तैत्तिरीय आरण्यक में परवर्ती काल में जोड़ा गया है, किन्तु मैत्रायणी उपनिषद् से प्राचीन है। इस उपनिषद् में नारायण का परमात्मा तत्व के रूप में उल्लेख है। इसमें आत्मा का विशद विवेचन है। इस उपनिषद् के अनुसार 'एक ही परमसत्ता है, वही सब कुछ है।'[26] इसमें सत्य, तपस्, दया, दान, धर्म, अग्निहोत्र, यज्ञ आदि विविध विषयों की महत्वपूर्ण विवेचना है। इसमें तत्वज्ञानी के जीवन का यज्ञ के रूप में चित्रण है, जिसके अनुसार इसकी 'याज्ञिकी उपनिषद्' नाम की सार्थकता प्रतीत होती है।

10. **छान्दोग्योपनिषद्**

सामवेद की तवल्कार शाखा का छान्दोग्य ब्राह्मण है जिसमें दस अध्याय हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। इस उपनिषद् के आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं। प्रथम अध्याय में तेरह खण्ड, द्वितीय में चौबीस, तृतीय में उन्नीस, चतुर्थ में सत्रह, पञ्चम में

चौबीस, षष्ठ में सोलह, सप्तम में छब्बीस और अष्टम अध्याय में पन्द्रह खण्ड हैं। इसमें गूढ़ दार्शनिक तत्वों का निरूपण आख्यायिकाओं के रूप में किया गया है। इसके प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में ओउम् (ऊँ), उद्गीथ एवं साम के गूढ़ रहस्यों का मार्मिक विवेचन है। द्वितीय अध्याय में आउम् की उत्पत्ति, धार्मिक जीवन की तीन अवस्थाएँ तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य एवं यतिधर्म का विवेचन है। इस अध्याय के अन्त में ''शैव उद्गीथ'' का विवेचन है। उद्गीथ का अर्थ है 'उच्चस्वर से गाया जानेवाला गीत।' इसमें भौतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए यज्ञ का विधान तथा सामगान करने वाले व्यक्तियों पर व्यङ्ग्य किया गया है।तृतीय अध्याय में वैश्वानर ब्रह्म का प्रतिपादन है, जिसका व्यक्त रूप सूर्य है। सूर्य की देवमधु रूप में उपासना, गायत्री का वर्णन, आङ्गिरस द्वारा देवकी नन्दन कृष्ण को अध्यात्म–शिक्षा और अन्त में अण्ड से सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल की कथा, रैक्य का दार्शनिक तथ्य, उपकौशल को जाबाल द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश आदि का विस्तृत विवेचन है। इसमें ब्रह्म को प्राप्त करने के साधन बताये गये हैं। पञ्चम अध्याय में बृहदारण्यक के षष्ठ अध्याय के दोनों कथाओं का एक प्रकार से आवर्तन है। इसमें श्वेतकेतु और प्रवाहण जैबलि का दार्शनिक सम्वाद तथा कैकय अश्वपति के सृष्टि विषयक तथ्यों का विशद वर्णन किया गया है, जिनमें छः दार्शनिक विद्वानों के आत्म विषय चिन्तनों का विवरण है। षष्ठ अध्याय में श्वेतकेतु का आख्यान वर्णित है, जिसमें उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है। श्वेतकेतु ने वेदों का अध्ययन तो कर लिया, किन्तु ब्रह्मज्ञान नहीं सीखा था, तब उसके पिता आरुणि ने उसे ब्रह्म से ही चराचर जगत् की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनाते हुए अन्न, जल और तेज से मन, प्राण और वाणी की उत्पत्ति बतायी है। तदनन्तर आरुणि ने श्वेतकेतु से वटवृक्ष का फल तोड़ने को कहा। फल तोड़ने पर उसमें से नन्हें–नन्हें बीज निकले, तब पिता ने उस बीज को भी फोड़ने को कहा। बीज के फोड़े जाने पर आरुणि ने कहा पुत्र ''तुमने इसमें क्या देखा है ?'' पुत्र ने कहा कि ''मुझे कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा है।'' तब पिता ने पुत्र को समझाया कि ''पुत्र! जिस बीज के भीतर तुम्हें कुछ भी नहीं दिखायी देता है, उसी में वह महान् वटवृक्ष है। इसी प्रकार ब्रह्म में ही सारा चराचर जगत् निहित है। 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य उपनिषदों के चार महावाक्यों में एक है। इस महावाक्य की व्याख्या करते हुए आरुणि श्वेतकेतु से कहता है कि वह अणु जो शरीर में आत्मा है, सत् है, सर्वात्मा है, वही आत्मा है, वही वह सत् है, हे श्वेतकेता`! तू वही है। श्वेतकेतु पुनः प्रश्न करता है कि ''वह आत्मा द्रष्टव्य क्यों नहीं है?'' इसका उत्तर देते हुए आरुणि कहते हैं कि ''जिस प्रकार जल में नमक डाल दिया जाय तो वह उसमें ऐसा घुल जाता है कि वह दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार आत्मा सब में व्याप्त है, किन्तु वह इस प्रकार उनमें घुल–मिल गया है कि वह अलग से दिखायी नहीं देती है।''

सप्तम अध्याय में नारद और सनत्कुमार का वृत्तान्त है। नारद ब्रह्मविद्या की शिक्षा के लिए सनत्कुमार के पास जाते हैं। सनत्कुमार ने नाम, वाक्, मन, संकल्पन, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण में से प्रत्येक को उत्तरोत्तर बढ़कर बताया और कहा कि सब कुछ प्राण में ही समाहित है और प्राण के न रहने पर मनुष्य का ऐहलौकिक जीवन नहीं रह जाता। अन्त में ब्रह्म के अन्तिम रूप 'भूमन्' (असीम) का महत्व बताते हुए कहते हैं कि ''भूमा ही सब कुछ है, वही शरीर में स्थित आत्मा है, वह अमृत है और अल्प ही मर्त्य है। अन्तिम अध्याय में शरीर और विश्व में स्थित आत्मा की तीन अवस्थाओं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का भी निर्देश है। तृतीय अवस्था में ही आत्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है। इस अध्याय के अन्त में इन्द्र और विरोचन की कथा वर्णित है। इस आख्यान में आत्म प्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का संकेत किया गया है।

11. **केनोपनिषद्**

यह सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध है। इसी को 'केनोपनिषद्' और 'जैमिनीयोपनिषद्' भी कहते हैं। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग पद्यमय है। यह वेदान्त के विकास काल की रचना प्रतीत होती है। द्वितीय भाग गद्यमय है और अत्यन्त प्राचीन

है। प्रत्येक भाग में दो खण्ड हैं। इस प्रकार कुल चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बताया गया है। द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का विवेचन है। तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में उमा हैमवती के रोचक आख्यान द्वारा पर ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता का विवेचन है। ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करते हुए हैमवती उमा ने देवताओं को बताया कि ''यही ब्रह्म है जिनके कारण तुम लोगों की इतनी महिमा है।'' वायु, अग्नि आदि उसी ब्रह्म के विकसित रूप हैं। बिना उसकी इच्छा के ये कुछ भी नहीं कर सकते। सगुण और निर्गुण ब्रह्म का पार्थक्य बताते हुए उमा ने कहा कि ''जिसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता, किन्तु जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, वही ब्रह्म है और जिनकी तुम उपासना करते हो,वह ब्रह्म नहीं है।'' ब्रह्म ज्ञान की सीमा से परे असीम है। वह ज्ञेय–अज्ञेय दोनों से भिन्न है। यह जीवात्मा उस पर ब्रह्म का अंश है। सगुण ब्रह्म उपास्य है और निर्गुण ब्रह्म अज्ञेय तथा अनिर्वचनीय है।

12. **प्रश्नोपनिषद्**

यह अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा से सम्बद्ध है। इसमें सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सत्यकाम, सौर्यायणी और कबन्धी ये छः ऋषि महर्षि पिप्पलाद से अध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। इसी कारण इसका नाम 'प्रश्नोपनिषद्' है। ऋषियों द्वारा पूछे गये छः प्रश्न –

प्रथम प्रश्न कबन्धी कात्यायन का है – समस्त प्रजा की उत्पत्ति कैसे और कहाँ से हुई है ?''

द्वितीय प्रश्न भार्गव का है – ''कितने देवता प्रजाओं को धारण करते हैं, कौन उन्हें प्रकाशित करता है और उनमें कौन सबसे श्रेष्ठ है ?''

. तृतीय प्रश्न आश्वलायन का है – ''प्राणों की उत्पत्ति कहाँ से होती है ? और उसका शरीर में आवागमन एवं उत्क्रमण किस प्रकार होता है ?''

चतुर्थ प्रश्न गार्ग्य सौर्यायणी का है – ''आत्मा की जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का आध्यात्मिक रहस्य क्या है ?''

पञ्चम प्रश्न सत्यकाम का है – ''ऊँ 'आ उम्' की उपासना का क्या रहस्य है ? उसके ध्यान से किस लोक की प्राप्ति होती है ?''

षष्ठ प्रश्न सुकेशा का है – ''षोडशकला सम्पन्न पुरुष का स्वरूप क्या है ?''

इन छहों प्रश्नों का उत्तर महर्षि पिप्पलाद ने छहों शिष्यों को दिया है। उनके उत्तर अध्यात्मवाद के प्राण हैं। इस उपनिषद् की शैली अत्यन्त वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण है।

13. **मुण्डकोपनिषद्**

यह अथर्ववेद की शौनक शाखा का उपनिषद् है। इसका मुण्डक नाम इसलिए पड़ा कि सम्भवतः इस सम्प्रदाय के लोग अपना शिर मुण्डित रखते थे। इसमें कुल तीन मुण्डक हैं। प्रत्येक मुण्डक में दो–दो खण्ड हैं। इस उपनिषद् में ब्रह्मा के द्वारा अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश देने का वर्णन है। इसमें परा और अपरा नामक दो विद्याओं का विवेचन है। जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो सके, उसे पराविद्या कहते हैं और वेद–देवाङ्ग आदि को अपराविद्या कहते हैं। यह अक्षर ब्रह्मज्ञान की सीमा से परे अज्ञेय है। इस अक्षर ब्रह्म से ही जगत् की सृष्टि होती है। इस उपनिषद् में द्वैतवाद का स्पष्ट संकेत मिलता है। दो पक्षियों के रूपक द्वारा जीव और ब्रह्म का भेद समझाया गया है – ''परस्पर सख्यभाव से एक साथ रहने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) उस पिप्पल के वृक्ष के फलों का स्वाद लेकर उसका भोग करता है और दूसर भोग न करता हुआ केवल देखता रहता है।

14. **माण्डूक्योपनिषद्**

इसमें कुल बारह वाक्य हैं, यह गद्यात्मक है। इसमें ओङ्कार का रहस्य बताया गया है। इसमें ब्रह्म और आत्मविषयक विवेचन हुआ है। इसमें ब्रह्म (आत्मा, चैतन्य) की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं – जाग्रत्, स्वप्न्, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत् अवस्था में आत्मा इन्द्रिय विषयों का भोग करता है। इसे वैश्वानर कहते हैं। स्वप्नावस्था में अपनी पूर्व अवस्थाओं का ज्ञान रहता है, इसे तेजस् कहते हैं। सुषुप्त अवस्था में उसे कोई

इच्छा नहीं रहती, केवल ज्ञानमात्र रहता है। उस अवस्था में आत्मा प्रज्ञानधन और आनन्दमय होता है। इसे 'प्राज्ञ' कहते हैं। तुरीयावस्था में ब्रह्म निर्विकार एवं अद्वैतावस्था में रहता है। इस अवस्था में ब्रह्म शिवरूप हो जाता है। यही चैतन्य आत्मा का विशुद्ध रूप है। इस उपनिषद् के अनुसार 'ओउम्' के अ उ म् – ये तीन वर्ण क्रमशः ब्रह्म की तीन अवस्थाओं के द्योतक हैं और पूरा ओउम् चतुर्थ अवस्था को द्योतित करता है।

अभ्यास प्रश्न– निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1. उपनिषद में कितने उपसर्गो का प्रयोग है–

क. 3 ख.4 ग. 5 घ. 2

2. विशरण अर्थ किससे सम्बन्धित है–

क. वेद ख.पुराण ग. मीमांसा घ.उपनिषद

3. रहस का अर्थ है–

क. एकान्त ख.जंगल ग. पर्वत घ.गॉव

4. भारतीय परम्परा में कितने उपनिषद माने गये हैं–

क. 50 ख 60 ग. 80 घ.108

5. उपनिषद वाक्य महाकोश में उपनिषदों की कितनी संख्या मानी गयी है–

क. 175 ख. 223 ग. 225 घ. 228

6. दाराशिकोह ने फारसी में उपनिषदों का संग्रह अनुवाद किस नाम से कराया था–

क. उपनित ख.उपनस ग. ओपन घ.ओपनिखत

7. शंकराचार्य ने जिन 10 उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है कहा उल्लिखित है–

क. नारायाण सूची ख. उपनिषद संग्रह ग.मुक्तिकोपनिषद् घ.कोई नहीं

8. नचिकेता का वर्णन किस उपनिषद में है –

क. कठोपनिषद ख.वृहदारण्यक उपनिषद ग. छान्दोग्य उपनिषद घ. तैतरीय उपनिषद

3.5 सारांश

समस्त उपनिषदें किसी एक काल एवं किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं हैं। विभिन्न काल के विभिन्न ऋषियों ने अपने जीवनकाल में संसार का जो कुछ अनुभव किया , इनमें उनके अनुभवों का संग्रह है, उनके विचारों का संग्रह है। इनमें कुछ ऋषि वैदिककालीन भी हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये वैदिककाल के अन्त की और ब्राह्मणयुग के समकालीन कृतियाँ हैं। प्राचीन उपनिषदें, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध वेदों से है और जो ब्राह्मणों के भाग हैं, उनका रचनाकाल बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व का है और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती है। ऐतरेयोपनिषद् का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से है। ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम भाग को ऐतरेय आरण्यक कहते हैं। ऐतरेय आरण्यक में द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ से षष्ठ अध्यायों को 'ऐतरेय–उपनिषद्' कहते हैं। कौषीतकि आरण्यक के तृतीय से षष्ठ अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। शुक्लयजुर्वेद की काव्य एवं वासनेयी संहिता का चालीसवाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से प्रसिद्ध है, कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण का अन्तिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक कहलाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस प्रपाठकों में सप्तम, अष्टम एवं नवम प्रपाठकों को तैत्तिरीयोपनिषद् कहते हैं। कृष्णयजुर्वेद की कठखाखा का 'कठोपनिषद' है। इसमें कुल दो अध्याय और छः बल्लियाँ हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् कृष्णयर्जुवेद से सम्बद्ध श्वेताश्वतर संहिता का एक अंश है। मैत्रायणीयोपनिषद कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है। कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक

को 'महानारायणोपनिषद्' कहा जाता है । सामवेद की तवल्कार शाखा के छान्दोग्य ब्राह्मण में दस अध्याय हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है।केनोपनिषद् सामवेद की जैमिनीय शाखा से है। इसी को 'केनोपनिषद्' और 'जैमिनीयोपनिषद्' भी कहा जाता है। इसके दो भाग हैं – प्रथम भाग पद्यमय है। द्वितीय भाग गद्यमय है और अत्यन्त प्राचीन है। प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा से है। इस उपनिषद् में सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सत्यकाम, सौर्यायणी और कबन्धी इन छः ऋषियों द्वारा पिप्पलाद से अध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछा गया है। मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद की शौनक शाखा का उपनिषद् है। माण्डूक्योपनिषद् में कुल बारह वाक्य हैं, यह गद्यात्मक है। इसमें ओङ्कार का रहस्य बताया गया है। इसमें ब्रह्म और आत्मविषयक विवेचन किया गया है।अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप उपनिषदों का परिचय भलीभॉति समझा सकेंगे ।

3.6 शब्दावली

अध्यात्मविषयक – जिस वर्णन में आत्मा के सम्बन्ध में विमर्श हो और ब्रह्मविषयक चिन्तन किया गया हो उसे अध्यात्मविषयक कहा जाता है ।
आश्वलायन – यह नाम है
सत्यकाम –सत्यकाम नामक ऋषि
सौर्यायणी –स्त्री
प्रश्नोपनिषद् –जिसमें प्रश्नोत्तर हो ऐसा
कालक्रम– समय के क्रम में

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.घ. 2 **2.** घ. उपनिषद 3.क. एकान्त 4.घ.108 5.ख 60
6.घ.ओपनिखत 7.ग.मुक्तिकोपनिषद् 8. क. कठोपनिषद

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा प्रकाशन वारासी
2. वैदिक साहित्य का इतिहास –डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी– चौखम्भा प्रकाशन वारासी
3. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास –बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा प्रकाशन वारासी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.उपनिषदों के रचनाकाल को समझाइये।

2.किन्हीं चार उपनिषदों का परिचय दीजिए ।

3.कठोपनिषद् और छान्दोग्य का परिचय दीजिए

इकाई 4. उपनिषदों के प्रमुख प्रतिपाद्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 आत्मतत्व का वर्णन

4.4 ब्रह्मतत्व का वर्णन

4.5 प्राणतत्व का विवेचन

4.6 पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त् का विवेचन

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.3 आत्मतत्व का वर्णन

'आत्मन्' शब्द 'अन् प्राणने' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है प्राण। ऋग्वेद में इसका अर्थ वायु बताया गया है। ब्राह्मणों में यही शब्द जीवात्मा का वाचक हो गया है। आचार्य शङ्कर 'आत्मन्' शब्द की व्युत्पत्ति का निर्देश करते हुए कहते हैं कि ''जो सर्वत्र व्याप्त है, सबको अपने में ग्रहण कर लेता है, विषयों का उपभोग करता है और जो इसकी सत्ता निरन्तर रहती है, इन्हीं कारणों से इसे 'आत्मा' कहते हैं। कठोपनिषद् में आत्मस्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है कि ''यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न स्वयं किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातत्व है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। यह आत्मा अणु से भी छोटा और महान् से भी महान् है और यह समस्त प्राणियों के हृदय रूपी गुहा में स्थित है, उसकी महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक परमेश्वर की कृपा से ही जान सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्र और प्रजापति के सम्वाद द्वारा आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। प्रजापति कहते हैं कि ''आत्मा वह है जो पाप से मुक्त है, जरा से मुक्त है, वृद्धावस्था से रहित है, मृत्यु एवं शोक से रहित है, भूख और प्यास से रहित है, जो सत्य काम है वही जानने और अनुभव करने योग्य है। इस प्रकार यह आत्मा अजन्मा, नित्य, व्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वातिशायि है। माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा को तुरीय कहा गया है। इस उपनिषद् में आत्मा की चार अवस्थाओं का निरूपण किया गया है – जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत् अवस्था में आत्मा स्थूल पदार्थों का अनुभव करता है। स्वप्नावस्था में वह सूक्ष्म पदार्थों का अनुभव करता है और सुषुप्ति अवस्था में आत्मा ब्रह्म के साथ तद्रूप होकर आनन्द का अनुभव करता है। प्रथम दोनों अवस्थाओं में आत्मा का ब्रह्म एवं आभ्यन्तर जगत् से सम्बन्ध होने के कारण द्वैत का भान रहता है, किन्तु तृतीय अवस्था में आत्मा परमानन्द का अनुभव करता है। अतः इसे द्वैत का भान नहीं रहता। इन्हीं तीनों को क्रमशः वैश्वानर, तेजस् और प्राज्ञ कहते हैं। आत्मा की एक तुरीय अवस्था है। यह शुद्ध चैतन्य की अवस्था है। इसमें बाह्य और आभ्यन्तर किसी भी प्रकार के पदार्थों का भास नहीं रहता है।

4.4 ब्रह्मतत्व का वर्णन

'ब्रह्म' शब्द बृह् धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'बढ़ना'। आचार्य शङ्कर ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति 'वृहति' (अतिशय) से मानते हैं और उसका अर्थ शाश्वत एवं विशुद्ध करते हैं। माध्व के अनुसार जिसमें गुण पूर्वण रूप में रहते हैं, उसे 'ब्रह्म'

कहते हैं। (बृहन्तो ह्यस्मिन् गुणाः।) ऋग्वेद में 'ब्रह्मन्' शब्द का स्तुति के अर्थ में प्रयोग हुआ है, अथर्ववेद में यह शब्द यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त होता था और ब्राह्मणों में यह पवित्रता को बोधक हो गया। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दरूप है। वही सबकी आत्मा है और उसी से इस मानरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् के एक आख्यान में बताया गया है कि वरुण पुत्र भृगु अपने पिता से प्रश्न करते हैं कि मुझे ब्रह्म का ज्ञान कराइये।' तब वरुण ब्रह्म का उपदेश देते हैं कि ''जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जिसके द्वारा जीवित रहते हैं तथा अन्त में जिसके पास जाते हैं और जिसमें लीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है।उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का निर्देश मिलता है–निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म को 'परब्रह्म' कहा गया है। वह परब्रह्म सच्चिदानन्द रूप है, वाङ्मनसगोचर नहीं है और निरुपाधि होने के कारण अनिर्वचनीय, तैत्तिरीयोपनिषद् में इसे सत्य, ज्ञान और अनन्त कहा गया है (सत्यं ज्ञानमनस्तं ब्रह्म)। मुण्डकोपनिषद् में इसे अक्षर, आनन्दरूप, अजर और अमर भी कहा गया है। वह अदृश्य, अग्राह्य, अनादि, रूपरङ्ग से रहित तथा चक्षु और श्रोत्र से रहित है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी के प्रश्न का उत्तर देते हुए उस अक्षरब्रह्म को अवाङ्मनसगोचर कहा है। सगुण ब्रह्म को 'अपरब्रह्म' कहा गया है। यह अपरब्रह्म ससीम, नित्य, विभु, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता और विश्व का सर्जक, पालक एवं संहारक है और सोपाधि होने के कारण वर्णनीय है। छान्दोग्योपनिषद् में सगुण ब्रह्म का विवेचन 'तज्जलान्' शब्द के द्वारा किया गया है। 'तज्जलान्' शब्द का अर्थ है – 'उस ब्रह्म से यह जगत् उत्पन्न होता है (तज्ज), उसी में लीन हो जाता है (तल्ल) और उसी से धारण करता है। (तदन्)।'' अर्थात् उस जगत् को उत्पन्न करने वाला, धारण करने वाला और अपने में लीन करने वाला वह ब्रह्म ही है। इस प्रकार सगुण ब्रह्म ही इस संसार का कारण है, सब का स्वामी है, वही सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और नामरूपात्मक जगत् का अधिष्ठाता है। वस्तुतः दोनों में कोई तात्विक भेद नहीं है। दोनों ही एकत्व (ब्रह्म) के दो दृष्टिकोण हैं। यही करण है कि अनेक स्थलों पर एक ही स्थान पर ब्रह्म का उभयविध वर्णन प्राप्त होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक ओर उसे सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कर्माध्यक्ष और साक्षी कहा है। दूसरी ओर उसे ही निर्गुण कहा है। इस प्रकार ब्रह्म के उभयरूप के वर्णन के पश्चात् भी उपनिषदों में उसे अनिर्वचनीय कहा गया है।

ब्रह्म और आत्मा

वेद और ब्राह्मणों में ब्रह्म और आत्मा अलग–अलग अर्थों में प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु उपनिषदों में आकर ये दोनों एक–दूसरे के पर्यायवाचक हो गये। मुण्डकोपनिषद्

में कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा दोनों ही सख्यभाव से शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं। उनमें से एक (आत्मा) कर्मफलों का भोग करता है और दूसरा (परमात्मा) उसे साक्षी रूप में देखता है। इस कथन से यद्यपि द्वैत की प्रतीति हो रही है, किन्तु इसी उपनिषद् के अग्रिम वचनों से दोनों की अद्वैतता सिद्ध होती है। जैसा कि कहा गया है कि 'यह अमृत (अविनाशी) ब्रह्म ही ऊपर–नीचे, आगे–पीछे, दायें–बायें चारों ओर व्याप्त है और यह विश्व ब्रह्म ही है और जो इस ब्रह्म को जान लेता है, ब्रह्म ही हो जाता है। उक्त कथन की पुष्टि बृहदारण्यकोपनिषद् से भी होती है कि ''यह आत्मा ही ब्रह्म है और उसने अपने हृदय में स्थित आत्मा को 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा समझा। छान्दोग्योपनिषद् में श्वेतकेतु के उपाख्यान द्वारा जीवात्मा और ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित किया गया है। उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए कहते हैं कि ''हे श्वेतकेतो! वह यह जो अणिमा (अणुरूप) है, यह सब कुछ तद्रूप है, वह सत् है, वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! 'वही तू है' (त्वमसि)।इस प्रकार 'तत्वमसि, इस वाक्य के द्वारा आत्मा और ब्रह्म में ऐक्य स्थापित किया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में शाण्डिल्य का सिद्धान्त आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादक है। शाण्डिल्य का कथन है कि ''ये मेरी आत्मा मेरे अन्तर हृदय में ब्रह्म है। जब मैं इस संसार से जाऊँगा तो उससे एकरूप हो जाऊँगा, जिसे यह ज्ञान हो गया है उसके लिए कोई भी विचिकित्सा शेष नहीं है। इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में अन्य भी बहुत से उपाख्यान मिले हैं जिनके द्वारा ब्रह्म और आत्मा का ऐक्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है। माण्डूक्योपनिषद् में भी बताया गया है कि ''यह सब कुछ ब्रह्म ही है, यह आत्मा ब्रह्म है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि ''यह आत्मा ही ब्रह्म है और वह महान् अजन्मा अजर, अमर एवं अभय है, जो ऐसा जानता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार यह समस्त दृश्यमान जगत् ब्रह्म है, यह जीव ब्रह्म है, यह आत्मा भी ब्रह्म है, यह सब कुछ ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है।

4.5 प्राणतत्व का विवेचन

उपनिषदों में कई स्थलों पर 'प्राण' शब्द का प्रयोग 'आत्मा' के लिये हुआ है। इसे विज्ञानमय पुरुष से अभिन्न समझा गया है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार एक बार प्राण और इन्द्रियों में परस्पर विवाद हुआ कि हममें कौन बड़ा है। इस पर सब प्रजापति के पास गये। तब प्रजापति ने कहा कि 'तुम में से जिसके उत्क्रमण करने पर शरीर नष्ट हो जाय और पापियों जैसा प्रतीत होने लगे, वही श्रेष्ठ है। सबसे पहले वउणी शरीर छोड़कर चली गई और एक वर्ष के बाद लौटकर देखा तो शरीर में किसी का

विकार नहीं है, उसकी सारी क्रियाएँ ज्यों की त्यों है। उसने पूछा कि मेरे अभाव में तुम कैसे जीवित रहे ? उन्होंन कहा कि जैसे मूक व्यक्ति बिना बोले हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे। तब वाणी शरीर में प्रवेश कर गई। इसके बाद चक्षु ने उत्क्रमण किया। एक वर्ष तक बाहर रहने के बाद लौटकर देखा शरीर का कुछ भी नहीं बिगड़ा है और उसने भी शरीर में प्रवेश किया। तदनन्तर श्रोत्र शरीर छोड़कर चला गया और एक संवत्सन रहने के बाद लौटकर देखा कि शरीर का कुछ भी नहीं बिगड़ा है। वह भी शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसके बाद मन चला गया और एक वर्ष बाहर रहने के बाद लौटकर देखा कि शरीर ज्यों का त्यों बना है, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा है। उसके बाद जब प्राण जाने को तैयार हुआ, वैसे ही सारी इन्द्रियाँ व्याकुल होने लगीं और प्राण से कहने लगीं कि ''आप मत जाइये, यहीं रहिये, हममें आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ये मन, वाणी, श्रोत्र, चक्षु सभी प्राण ही हैं और प्राण ही आत्मा है।

ब्रह्म और जगत्

उपनिषदों में ब्रह्म को जगत् का कारण बताया गया है। यह ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति का निमित्त कारण है और उपादान कारण भी।मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि 'जिस प्रकार मकड़ी जाला बनाती है और फिर अपने में समेट लेती है, जैसे पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न होती है और जैसे पुरुष के केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ''उस परमात्मा (ब्रह्म) से सूक्ष्म आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह जगत् इस ब्रह्म का परिणाम है। सृष्टि अभिव्यक्ति हे, अभिव्यक्ति के पूर्व जगत् अव्यक्त रूप था, वह अव्यक्त रूप ही ब्रह्म है और ब्रह्म की व्यक्तावस्था ही जगत् है। माया सर्वोच्च ब्रह्म की वह शक्ति है जिससे जगत् की अभिव्यक्ति होती है। माया पर सर्वोच्च का नियन्त्रण रहता है और सर्वोच्च माया के द्वारा ही जगत् को अभिव्यक्त करता है। उपनिषदों के अनुसार यह समस्त दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् ब्रह्म का एक रूप है और ब्रह्म उस जगत् का मूल कारण है। यह जगत् ब्रह्म में से आता है और उसी में लौट जाता है। जगत् की जो भी कुछ सत्ता है वह ब्रह्म के कारण है।

4.6 पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त् का विवेचन

उपनिषद् की विचारधारा के अनुसार मानव जन्म–मरण एवं आवागमन की विभीषिका से संत्रस्त होकर उससे मुक्ति पाने की चेष्ट करता है और उससे उन्मुक्त होकर अमृत्व प्राप्त करता है। यदि वह अच्छा कर्म करता है, तो अच्छा फल प्राप्त

करता है और यदि बुरा कर्म करता है, तो बुरा फल प्राप्त करता है। अतएव उपनिषदें सदैव सत्कर्म की प्रेरणा देती हैं। जैसा कि ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि ''सत्कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। इससे ज्ञात होता है कि निष्काम भाव से सत्कर्म करने से मानव जन्म–मरण की विभीषिका से पीड़ित नहीं होता, किन्तु जो स्वार्थवश कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वे अवश्य ही जन्म–मरण की विभीषिका को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अपने–अपने किये गये कर्मों के अनुसार ही मानव का उत्थान–पतन होता है। याज्ञवल्क्य ने कर्म का महत्व बताते हुए कहा है कि मनुष्य पुण्य कर्म करने से पुण्यात्मा और पाप कर्म करने से पापी बनता है। आगे कहा गया है कि वह पुरुष काममय है, जैसा उसका काम (राग) होता है, वैसा ही संकल्प होता है; जैसा संकल्प होता है, वैसा कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा उसका भाग्य बनता है।इस प्रकार सत्कर्म के द्वारा जो व्यक्ति अपने को ऊपर उठाता है, उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है और जो व्यकित नीच कर्मों द्वारा अपने को नीचे गिराता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसी कर्म सिद्धान्त के आधार पर पुनर्जन्म सिद्धान्त का विकास पाया जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'श्रद्धा और तप में लीन व्यक्ति शरीर त्याग के अनन्तर देवयान मार्ग के द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और उनका संसार में पुनरागमन नहीं होता। इष्टापूर्त्त, यज्ञादि कर्मों में रत सदाचारी व्यक्ति पितृयान मार्ग से चन्द्रलोक को जाते हैं और पुण्यकर्मों के क्षय होने पर वहाँ से लौटकर शुभाशुभ कर्मों के अनुसार शुभ और अशुभ योनियों को प्राप्त करते हैं। कौषितकि उपनिषद् के अनुसार 'शरीर–त्याग' के अनन्तर समस्त प्राणी चन्द्रलोक को जाते हैं और वहाँ से कुछ पितृयान द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और कुछ व्यक्ति मर्त्यलोक में आकर नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेते हैं। केनोपनिषद् के अनुसार देवयान को उत्तरमार्ग (उत्तरायण) और पितृयानमार्ग दक्षिणमार्ग (दक्षिणायन) कहते हैं।कठोपनिषद् में एक आख्यान द्वारा पुनर्जन्म की समस्या का प्रतिपादन किया गया है। नचिकेता नामक एक ब्राह्मण शिशु यमलोक पहुँचता है और यम उससे तीन वर माँगने को कहते हैं। नचिकेता प्रथम दो वर माँगने के बाद तृतीय वर के रूप में वह पूछता है कि ''मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है ?'' यमराज नचिकेता के आग्रह पर उक्त प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि ''जीवन और मरण विकास के ये विभिन्न स्वरूप हैं, जीव और ब्रह्म के ऐक्य की अनुभूति कराने वाला तत्वज्ञान मनुष्य को मृत्यु से अतीत बनाकर अमरत्व को प्राप्त कराता है।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए –

1. ऋग्वेद में आत्मन् का अर्थ क्या बताया गया है –

क. प्राण ख.वायु ग. आकाश घ. पृथ्वी

2. आत्मा को अज, नित्य,व शाश्वत किस उपनिषद् में कहा गया है –

क. श्वेताश्वतर ख. कठोपनिषद् ग. वृहदारण्यक् घ. प्रश्नोपनिषद्

3. उपनिषदों में आत्मा की कितनी अवस्थएं हैं –

क. पॉच ख. चार ग. सात घ. दस

4. वरूण के पुत्र कौन हैं –

क. अंगिरा ख. भृगु ग. सत्यकाम घ. कोई नहीं

5. उपनिषदों में ब्रह्म के कितने स्वरूप हैं –

क. तीन ख. आठ ग. दो घ. तीन

6. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म किस उपनिषद् से सम्बन्धित है–

क. मैत्रायणीयोपनिषद् ख. तैतिरीयोपनिषद् ग. प्रश्नोपनिषद् घ. मुण्डकोपनिषद्

7. ब्रह्म और आत्मा सख्यभाव से शरीररूपीवृक्ष पर रहते हैं,यह कथन किस उपनिषद् का है–

क. मुक्तिकापनिषद् ख.महानारायणीयोपनिषद् ग. छान्दोग्योपनिषद् घ. मुण्डकोपनिषद्

8. उद्दालक आरूणि के पुत्र का नाम है –

क. नचिकेता ख. श्वेतकेतु ग. ब्रह्मा घ. इरक

9. तत्वमसि किस उपनिषद् से है –

क. छान्दोग्य ख.तैत्तिरीय ग. प्रश्न घ. मुण्डक

10. निम्नलिखित में किसमें शाण्डिल्य का सिद्धान्त है–

क. मुक्तिकोपनिषद् ख.मुण्डक ग. ईशावास्य घ. छान्दोग्य

11. मकड़ी के जाल बनाने का तथ्य किस उपनिषद् में है –

क. मुण्डक ख.माण्डूक्य ग. छान्दोग्य घ. ऐतरेय

नैतिक सिद्धान्त

परम्परा से ही उपनिषदें आदर्शों की जननी है। इनके नैतिक उपदेश इतने दिव्य हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य शाश्वत सुख एवं विमल शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदें मानव–जीवन की नैतिक शिक्षा की बार–बार प्रेरणा देती हैं कि उठो, जागो और बड़ों से शिक्षा ग्रहरण करो। ऐसा करने से मानव का परम कल्याण होगा। तैत्तिरीयोपनिषद् का उपदेश तो अमृत से भरा हुआ है। **सत्यंवद् धर्मं चर** ''सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, सत्य और धर्म के पालन में आलस्य मत करो, देवता, पितर, माता, पिता, गुरु, अतिथि के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, श्रद्धा, भक्ति एवं नम्रता से दान करो। छान्दोग्योपनिषद् में जीवन को एक यज्ञ के रूप में कल्पित किया गया है और तप, दान, आर्जव, अहिंसा एवं सत्यवादिता को उस यज्ञ की दक्षिणा बताया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रजापति अपने तीनों सन्तानों (देव, मनुष्य और असुर) को सभी सद्गुणों में एक ही 'द' का उपदेश देते हैं उनके इस उपदेश से देवों ने 'द' से दमन (दाम्यत) की शिक्षा ली, मनुष्यों ने 'द' से दान (दत्त) की

शिक्षा ली और असुरों ने 'द' से दया (दयध्वम्) की शिक्षा ली। प्रजापति ने कहा कि दैवीवाक् में भी उन्हें 'द द द' यही श्रवण होता है, अतः तुम्हें दाम्यत (आत्मनिग्रह), दत्त (दान) और दयध्वम् (दया) इन तीन गुणों को ग्रहण करना चाहिये।

4.7 सारांश

कठोपनिषद् में आत्मस्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है कि ''यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न स्वयं किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातत्व है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। यह आत्मा अणु से भी छोटा और महान् से भी महान् है और यह समस्त प्राणियों के हृदय रूपी गुहा में स्थित है, उसकी महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक परमेश्वर की कृपा से ही जान सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्र और प्रजापति के सम्वाद द्वारा आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा दोनों ही संख्यभाव से शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं। उनमें से एक (आत्मा) कर्मफलों का भोग करता है और दूसरा (परमात्मा) उसे साक्षी रूप में देखता है। इस कथन से यद्यपि द्वैत की प्रतीति हो रही है, किन्तु इसी उपनिषद् के अग्रिम वचनों से दोनों की अद्वैतता सिद्ध होती है। जैसा कि कहा गया है कि 'यह अमृत (अविनाशी) ब्रह्म ही ऊपर–नीचे, आगे–पीछे, दायें–बायें चारों ओर व्याप्त है और यह विश्व ब्रह्म ही है और जो इस ब्रह्म को जान लेता है, ब्रह्म ही हो जाता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि ''सत्कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। इससे ज्ञात होता है कि निष्काम भाव से सत्कर्म करने से मानव जन्म–मरण की विभीषिका से पीड़ित नहीं होता, किन्तु जो स्वार्थवश कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वे अवश्य ही जन्म–मरण की विभीषिका को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अपने–अपने किये गये कर्मों के अनुसार ही मानव का उत्थान–पतन होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् का नैतिक उपदेश तो अमृतमय है। **सत्यंवद् धर्मं चर** ''सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, सत्य और धर्म के पालन में आलस्य मत करो, देवता, पितर, माता, पिता, गुरु, अतिथि के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, श्रद्धा, भक्ति एवं नम्रता से दान करो। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रजापति अपने तीनों सन्तानों (देव, मनुष्य और असुर) को सभी सद्गुणों में एक ही 'द' का उपदेश देते हैं उनके इस उपदेश से देवों ने 'द' से दमन (दाम्यत) की शिक्षा ली, मनुष्यों ने 'द' से दान (दत्त) की शिक्षा ली और असुरों ने 'द' से दया (दयध्वम्) की शिक्षा ली।

4.8 शब्दावली

शाश्वत – सदा रहने वाला

पुरातत्व – प्राचीन तत्व

अज – अजन्मा

इष्टापूर्त्त – इष्ट की प्राप्ति कराने वाला

विभीषिका – भयानकता

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2.ख 3.ख 4.ख 5. ग 6.ख 7.घ 8.ख 9.क 10.घ 11. क

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.भारतीय साहित्य का इतिहास,
2.प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ0 175
3.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल)
4.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल) पृ0 216
5.कठोपनिषद् शांकरभाष्य 2/2/20

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रह्म और आत्मा के निरूपण पर प्रकाश डालिए
2.उपनिषदों में वर्णित नैतिक शिक्षा का वर्णन कीजिए
3. प्राणतत्व की विवेचना पर विस्तार से लिखिए ।